प्राचीन भारतीय गणित

Urmila Srivastava

Arya Kanya Degree College, Allahabad

Abstract

The word 'ganita is derived from the root 'gan' by adding suffix 'kta' in the sense of 'to count'. Aryans, old inhabitants of ancient India were really religious minded and were devoted to sacrificial cult. The sacrifies performed at right time, at right place, at right direction and at right constellation, were definitely fruit bearing. Thus Indian Mathematics was developed to calculate these astrological terms accordingly. It was migrated to the whole world, later on.

Thanks to sacrificial culture, which is known as orthodox and outdated custom, now-a-days but which was a source of mathematics and mathematics was the source of all natural sciences. Arithmatic, the manifested mathematics and Algebra, the. unmanifested mathematics, two folds of the subject are findings of the deep intellect of that race of Aryans who were deadly keen to bring out the secret of manifested creation and unmanifested creator. Unmanifested creator manifests himself through molecules, the smallest and fundamental unit of compounds. Different compounds of molecules are capable to make and shape the beautiful universe.

Popular numerical system, zero and decimal are great contributions of India to mankind. The solid foundation of India's brilliancy and deep knowledge is the only miraculous numerical system, invented by ancient scholars of ancient India. One can find it in all ancient religious scriptures of Aryans, written many-many centuries before Christ. So, it's true that Indian mathematics is a great gift to the progress of entire earth.

गणित विषय की व्यापकता सार्वभौम है। गणित सांख्यिकी के रूप में अर्थशास्त्र का नेत्र है, उच्चगणित के रूप में भौतिकी की आत्मा है, प्रक्षेपणास्त्र के रूप में देश की सुरक्षा का साधन है, ज्योतिष के रूप में इहलोक तथा परलोक के ज्ञान का साधन है, त्रिकोणमिति के रूप में व्योमगति का माध्यम है, अंकगणित के रूप में समस्त लोक व्यवहार का प्राण है, वास्तुशास्त्र के रूप में मापन का उपाय है, वाणिज्यशास्त्र के रूप में व्यापार का माध्यम है।[१]

गणित शब्द गण् धातु से क्त् प्रत्यय लगकर गिनना अर्थ में निष्पन्न है। आचार्य कौटिल्य ने कहा है - ***तस्माद्विक्रयः पण्यानां धृतो मितो वा कार्यः***[२] अर्थात् वस्तुओं को नाप-तोल-गिन कर विक्रय करे। कौटिल्य ने ही शैशवकाल से बालक के लिए गणित की शिक्षा का विधान किया है- ***व्रतचौलकर्मा लिपिसंख्यानञ्च उपयुञ्जीत***[३] अर्थात् चूडाकर्म के पश्चात् लिपि-लिखना, संख्यान-गिनती सिखाए। प्राचीन काल में बालकों को गिनती सिखाने के लिए 'गिनतारा' (abacus) नामक उपकरण था। बालक को पटिया पर गणित सिखाने से यह 'पाटीगणित' के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ।

गणित शब्द वैदिककाल में अपने मूलरूप में नहीं पाया जाता है तथापि उसमें गण गणपति और गण्या शब्द ऋग्वेद में उपलब्ध हैं। गणित के अन्य नाम गणना, संख्यान, संख्याशास्त्र, अंकविद्या, राशिविद्या आदि साहित्य में दृष्टिगत हैं। गणित शब्द का प्रथम प्रयोग वेदांग ज्योतिष के निम्न श्लोक में द्रष्टव्य है-

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।

तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्ध्नि वर्तते।।[४]

अवान्तरकाल में बापूदेव शास्त्री ने अंकगणित पद का प्रयोग करते हुए 'अंकगणित' नाम से एक पुस्तक भी लिखी। गणित विद्या के अभ्यास के लिए स्लेट का प्रथम प्रयोग भी उन्होंने ही किया।

वैदिककाल में गणित नक्षत्रविद्या के अन्तर्गत स्वीकार्य था क्योंकि धर्मपरायण आर्यजाति यज्ञप्रेमी थी। यज्ञफल की प्राप्ति तभी सम्भव थी जब उसका अनुष्ठान यथाकाल-यथानक्षत्र किया जाए, यह गणना गणित द्वारा ही सम्भव थी। अतः ज्योतिष शास्त्र की आवश्यकतानुसार गणित का विकास हुआ, जिससे ग्रह-गति-गणना, द्वारा तिथि-नक्षत्रों-पर्वों का ठीक-ठीक ज्ञान हो सके। इस

प्रकार यज्ञरूप कारण से गणित का आविर्भाव हुआ और विश्व ने गणित का प्रथम पाठ भारतवर्ष से सीखा-

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्व्याविहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्।।[५]

धन्य है वह यज्ञ व्यवस्था जो आज केवल प्राचीन धार्मिक रूढि के रूप में जानी जाती है किन्तु जिसने गणित को जन्म दिया, जिससे समस्त विज्ञान उत्पन्न हुए। व्यक्तगणित अर्थात् अंकगणित तथा अव्यक्तगणित अर्थात् बीजगणित के सम्यक् अवलोकन से ज्ञात होता है कि यह उसी जाति के मस्तिष्क की खोज है जो व्यक्त तथा अव्यक्त के चिन्तन-मनन में सर्वदा रत रहती थी। ऋषियों ने जिस प्रकार व्यक्त लोक को उस परमात्मा रूप अव्यक्त अंश से समुद्भूत माना उसी प्रकार व्यक्त गणित (अंकगणित) के समस्त बिन्दुओं के अव्यक्तगणित (बीजगणित) से समुद्भूत माना -

उत्पादकं यत्प्रवदन्ति बुद्धेरधिष्ठितं सत्पुरुषेण सांख्याः।
कृत्स्नस्य लोकस्य तदेकबीजमव्यक्तमीशं गणितं च वन्दे।।[६]

सृष्टिप्रक्रिया में सर्वत्र गणित के अनेक उच्चस्तरीय सिद्धान्त, जो हमारी सामान्य बुद्धि से बहुत परे हैं, निरन्तर कार्य कर रहे हैं। हम जितनी दूर तक संख्याओं की, रेखाओं की, बीजों की कल्पना कर सकते हैं उससे असंख्य गुणा अधिक इनका विस्तार इस विश्व को संचालित कर रहा है-

बहुभिर्विप्रलापैः किम् त्रैलोक्ये सचराचरे।
यत्किञ्चिद्वस्तु तत्सर्वं गणितेन विना न हि।।[७]

सृष्टि का संचालन उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय के वैज्ञानिक क्रम से होता है जिसमें एक नियमित विज्ञान है। इस देशकालावच्छिन्न विश्व को छान्दस् विज्ञान रूप गणित व्याप्त किए है। उस छान्दस् विज्ञान रूप गणित की उपलब्धि के लिए हमारा व्यवहार गणित प्रवृत्त होता है। छान्दस् विज्ञान के गणित में अक्षर काल की इकाइयों में विभक्त होकर "**ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः**" में परिणत हो जाते हैं। इस रूप में वे विभिन्न तत्त्वों के आश्रित होकर मात्रा एवं काल के परिणाम में सृष्टि का संचालन करते हैं। यजुर्वेद में कहा है- "**अङ्काङ्कं छन्दः तथा अक्षरपंक्तिश्छन्दः**"[८] - अंकविद्या ही छन्द है, छन्द होने से वह अंकविद्या सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। छन्दों की गणना अक्षर-पाद-यति-विराम आदि पर अवलम्बित है।

गतिण भारत के प्राचीनतम शास्त्रों में से एक है अतः प्राच्यग्रन्थों में उसका उल्लेख स्वाभाविक है। वैदिककालीन ग्रन्थों - वेदों, उपनिषदों, संहिताओं, आरण्यकों, ब्राह्मणों में तथा उसके पश्चात् पुराणों व रामायण, महाभारत आदि में सूक्ष्मतर एवं बृहत्तर संख्याओं का अति उन्नत स्वरूप प्राप्त है। मेधातिथि ऋषि ने संख्यासूचक सारणी इस प्रकार दी है[९]- एक - १, दस - १०, शत - $१०^{२}$, सहस्र - $१०^{३}$, अयुत - $१०^{४}$, नियुत - $१०^{५}$, प्रयुत - $१०^{६}$, अर्बुद - $१०^{७}$, न्यर्बुद - $१०^{८}$, समुद्र - $१०^{९}$, मध्य - $१०^{१०}$, अन्त - $१०^{११}$, और परार्ध - $१०^{१२}$। तैत्तिरीय संहिता में[१०] १-१९ तक संख्याएँ, पुनः १९, २९, ३९, ४९, ६९, ७९, ८९, ९९; पुनः विषम तथा सम संस्थाएँ तथा ४, ५, १०, २० और १०० के गुणक की सारणी है। ई०पू० प्रथम शताब्दी के बौद्ध ग्रन्थ ललित विस्तर[११] में गणितज्ञ अर्जुन एवं महात्मा बोधिसत्त्व के संवादों में कोटि के बाद १०० पर आधारित संख्याओं की सूची प्रस्तुत की गई है, जिससे कोटि से तल्लक्षणा तक २४ संख्याओं की जानकारी मिलती है। ये सभी संख्याएँ द्विगुणित, दशगुणित तथा शतगुणित संख्या वाले अंकों की सूचना देती हैं। द्वितीय शताब्दी ई०पू० के ग्रन्थ पिंगल छन्दःशास्त्र[१२] में अंक लगभग इसी रूप में द्रष्टव्य हैं। पुराणों[१३] में शब्द तो लगभग यहीं प्रयुक्त है किन्तु परार्ध का स्थान और मान तेरहवें के स्थान पर अठारहवाँ हो गया है। पाँचवीं शताब्दी के गणितज्ञ आर्यभट्ट प्रथम[१४] ने भी इन सभी अंकों को अपने पूर्ववर्ती का दस गुना माना है। आठवीं शताब्दी के श्रीधराचार्य ने संख्याओं की सूची- एक, दश, शत, सहस्र, लक्ष, अयुत, प्रयुत, कोटि, अर्बुद, अब्ज, खर्व, निखर्व, महासरोज, शंख, सरितापति, अन्त, मध्य और परार्ध दी है। नवीं शताब्दी के जैन महावीर आचार्य[१५] ने लक्ष तक तो श्रीधर का अनुकरण किया है, उसके पश्चात् अधिक बड़ी संख्याओं के लिए पद्म, क्षोणी, क्षिति, क्षोभ आदि के साथ 'महा' पद का योग किया है। १२वीं शताब्दी के भास्कराचार्य[१६] ने उपर्युक्त लगभग सभी शब्दों का प्रयोग अपने ग्रन्थ लीलावती में किया है।

एक ओर जहाँ ग्रीक वासियों को चौथी सदी तक मैरायड (Myraid- $१०^{४}$) तथा रोमवासियों को पांचवीं सदी तक मिली (Milley- $१०^{३}$) की बड़ी संख्या का ही ज्ञान था, वहीं भारतीय मनीषियों को तल्लक्षणा - $१०^{५३}$, महौघ - $१०^{६०}$ तथा असंख्येय - $१०^{१४०}$ जैसी बृहद् संस्थाओं का ज्ञान था। भारतीय मनीषी संख्याओं को विभाजित करके उनका सूक्ष्म प्रयोग करने में भी कुशल थे। यथा- अर्ध -१, पाद - १/४, शफ - १/८, काष्ठा - १/१२, कला - १/१६ आदि। यह भी उल्लेख्य है कि अंग्रेजी भाषा में जिस अंकमाला को अरबी अंक (Arabian numerals) कहते हैं,

अरब के लोग उसे हिन्दसाँ अर्थात् भारत से प्राप्त कहते हैं। विकास की यात्रा का क्रम क्रमशः इस प्रकार होगा–

हिन्दी	अरबी	लैटिन	अंग्रेजी
शून्य	सिफिर	जिफर	जीरो
Shunya	Si-Fir	Ziffre	Zero

यजुर्वेद में सम और विषम संख्याओं की अद्भुत शृंखला का उल्लेख है[१७]– विषम संख्याएँ – **एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मे एकादश च मे एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च मे एकविंशतिश्च मे एकविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे पञ्चविंशति च मे पञ्चविंशति च मे सप्तविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे एकत्रिंशच्च मे एकत्रिंशच्च मे त्रयस्त्रिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।**

१, ३, ५, ७, ९, ११, १३, १५, १७, १९, २१, २३, २५, २७, २९, २१, ३३।

समसंख्याएँ– **चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विंशतिश्च मे विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मे द्वात्रिंशच्च मे द्वात्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मेऽष्टाचत्वारिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।**

४, ८, १२, १६, २०, २४, २८, ३२, ३६, ४०, ४४, ४८।

अथर्ववेद में दस तक अंकों के उल्लेख इस प्रकार हैं[१८]– य एतं देवमेकः तं वेद। न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते। न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते। नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते।

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०।

इन्हीं एक से लेकर नौ तक अंकों से दहाई बनाने के लिए अथर्ववेद में कहा है[१९]–

एका च मे दश च मे, द्वे च मे विंशतिश्च मे, तिस्रश्च मे त्रिंशच्च मे, चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मे, पञ्च च मे पञ्चाशच्च मे, षट् च मे षष्टिश्च मे, सप्त च मे सप्ततिश्च मे, अष्ट च मेऽशीतिश्च मे, नव च मे नवतिश्च मे, दश च मे शतं च मे, शतं च मे सहस्रं च मे।

१, १०, २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९०, १००, १०००।

वेदों में १९, २९, ३९ आदि संख्याओं के लेखन के लिए दो प्रकार के शब्द मिलते हैं– दहाई की संख्या में नवसंख्या जोड़कर अथवा दहाई की अगली संख्या में एक कम करके। यथा– नवदश तथा एकोनविंश – १९।

वायुपुराण (चौथी शती) के अनुसार शब्दांक लेखन प्रणाली संख्यांक लेखन प्रणाली की अपेक्षाकृत प्राचीन है, कारण यह कि लिपि का अविष्कार ईसा पूर्व हो चुका था किन्तु संख्या बताने के लिए ईसा पश्चात् भी रेखाओं का प्रयोग हो रहा था। इन आड़ी सीधी रेखाओं से ही संख्याओं की आकृतियाँ विकसित हुई, ये ही परिष्कृत हो कर आज के अंकों का चित्रांकन करके उनकी मर्यादा बताती हैं–

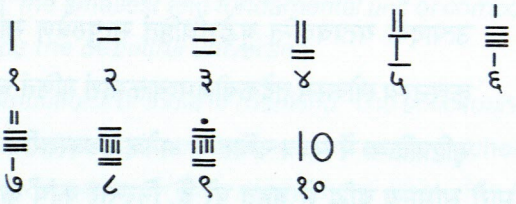

भारतीय संख्या पद्धति में लेखन और उच्चारण में शब्दांक और संख्यांक में विपरीत गति है– अंकानां वामतो गतिः – यथा पञ्चदश – १५, एकाशीतिः – ८१। शब्दांकलेख में इकाई का मान पूर्व में तथा अंकांक लेखन में उसे पश्चात् लिखते हैं। सामान्यतः बड़ी संख्याओं में दहाई का प्रयोग पूर्व में होता है। यथा–

त्रीणि शतानि त्रिसहस्राणि त्रिंशत् च नव च[२०] **– ३३३९।**

वेदों में अनेक बार देवताओं तथा सृष्टि को संचालित करने में सहायक अन्य तत्त्वों के माध्यम से संख्याओं को प्रस्तुत किया है। यथा– **अग्निरेकाक्षरेण, अश्विनौ द्वयक्षरेण, विष्णुस्त्रयक्षरेण, सोमश्चतुरक्षेण, पूषा पञ्चाक्षरेण, सविता षडक्षरेण, मरुतः सप्ताक्षरेण, बृहस्पतिरष्टाक्षरेण, मित्रो नवाक्षरेण, वरुणो दशाक्षरेण, इन्द्र एकादशाक्षरेण, विश्वेदेवा द्वादशाक्षरेण, वसवस्त्रयोदशाक्षरेण, रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण, आदित्याः पञ्चदशाक्षरेण, अदितिः षोडशाक्षरेण, प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण** – इन सत्रह संख्याओं से सृष्टि के १७ पदार्थों प्राण, मनुष्य, लोक, वन्य पशु, दिशाएँ, ऋतु, ग्राम्यपशु, छन्दों और स्तोमों की रचना का ज्ञान होता है।

अथर्ववेद के एक मन्त्र में प्रस्तुत संख्याओं को विपरीत क्रम से लिखने पर सरलतापूर्वक सृष्टि की आयु ज्ञात होती है–

शतं तेऽयुतं हायनान द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।

००० ०००० २ ३ ४

अर्थात् चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष की सृष्टि की आयु का विस्तार बताते हैं। यदि अंकों के साथ अयुत को छोड़ कर केवल शतं पद को जोड़ें तो कलियुग सर्वाधिक कम आयु का है। उसकी आयु ज्ञात होती है- चार लाख बत्तीस हजार - इस संख्या को पुनः द्वे- दो, त्रीणि - तीन, चत्वारि - चार से गुणित करने पर एक चतुर्युग (अर्थात् कलि, द्वापर, त्रेता तथा सतयुग) के कुल वर्षों की आयु - तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष ज्ञात होती है-

४,३२,०००	१ =	४,३२,०००	कलियुग
४,३२,०००	२ =	८,६४,०००	द्वापरयुग
४,३२,०००	३ =	१२,९६,०००	त्रेतायुग
४,३२,०००	४ =	१७,२८,०००	सतयुग
		४३,२०,०००	

आर्यभट प्रथम (जन्म ४७६ ई०) ने ज्योतिषीय संख्याओं की गणना को स्वरों तथा व्यञ्जनों के साथ जोड़कर उक्त प्रकार की बड़ी संख्याओं को सूत्रों में कहने की प्रणाली का आरम्भ किया। इसके लिए उसने स्वरों के घात तथा व्यञ्जनों के अंकीय मान निर्धारित कर एक सांकेतिक भाषा निकाली-

स्वर

अ - १, इ - १००, उ - $१००^{२}$, ऋ - $१००^{३}$, ऌ - $१००^{४}$, ए - - $१००^{५}$, ऐ - $१००^{६}$, ओ - $१००^{७}$, औ - $१००^{८}$,

व्यञ्जन

क - १, ख - २, ग - ३, घ - ४, ङ - ५। च - ६, छ - ७, ज - ८, झ - ९, ञ - १०। ट - ११, ठ - १२, ड - १३, ढ - १४, ण - १५। त - १६, थ - १७, द - १८, ध - १९, न - २०। प - २१, फ - २२, ब - २३, भ - २४, म - २५। य - ३०, र - ४०, ल - ५०, व - ६०, श - ७०, ष - ८०, स - ९०, ह - १००।

आर्यभट ने एक चतुर्युग के कुल वर्षों - ४३,२०,००० को बताने के लिए सूत्र दिया - ख्युघृ, इसे संख्याओं में निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाएगा-

(ख + य) उ + घ × ऋ

(२ + ३०) $१००^{२}$ + ४ × $१००^{३}$

३२ × १०००० + ४००,०००

= ४३,२०,०००

नीरोगता प्रदान करने वाले यज्ञों का अनुष्ठान ऋतुओं की सन्धियों अथवा पर्वों की तिथियों पर आयोजित किया जाता था। प्रातः सायं की सन्धियों, पक्ष की सन्धियों, मास की सन्धियों, ऋतु परिवर्तन की सन्धियों, चतुर्मास की सन्धियों, उत्तरायण-दक्षिणायन की सन्धियों में सम्पन्न यज्ञ सम्पूर्ण वर्ष आरोग्य, समृद्धि, मनःशान्ति आदि के लिए लाभकारी होते थे। कहा भी है- **यज्ञो वै सम्वत्सरः।** ऋग्वेद के एक मन्त्र में ज्योतिष सम्बन्धी वार्षिक तिथियों की गणना के लिए अनेक गणितीय पदों का समावेश किया है-

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नम्यानि क उ तच्चिकेत।

तस्मिन् साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षटिर्न चलाचला सः।।[२३]

प्रस्तुत मन्त्र में १२ भागों में विभक्त ३६० अंश के चक्र को तीन नाभियों (सर्दी, गर्मी, वर्षा) में विभक्त कहा है। इस चक्र का वर्णन महाभारत में भी लिखित है-

चतुर्विंशतिपर्व त्वां षण्णाभि द्वादशप्रधि।

तत्त्रिषष्टि शतं वै तु चक्रं पातु सदागति।।[२४]

हे राजन्! २४ पर्व (पक्ष), छः नाभियाँ (ऋतुएँ), १२ घेरे (मास) व ३६० अरों (दिनों) वाला चक्र तुम्हारा कल्याण करें। इस चक्र से सूर्य की प्रदक्षिणा मार्ग का ज्ञान वैदिक ऋषि को होता था, जिससे वे दिशाओं तथा १३वें अधिक मास की भी गणना कर लेते थे। वैदिक ऋषि ग्रहण गणना भी जानते थे। ऋग्वेद में ग्रहण गणना से अनभिज्ञ पुरुष को मूढ कहा गया है- **अक्षेत्रवित् यथा मुग्धः।**[२५]

भारत में रेखागणित का प्रारम्भ यज्ञवेदिकाओं के विभिन्न आकार-प्रकारों गोल, वर्गाकार, आयताकार या अर्धगोलाकार से हुआ। इन भिन्नाकृति वेदियों में श्येनचित वेदी का क्षेत्रफल सुनिश्चित या अन्य वेदियाँ उसी अनुपात में कम या अधिक की जाती थीं। मापने की इकाई एक पुरुष थी जिसका अर्थ था कि यज्ञकर्ता द्वारा अपने सिर के ऊपर हाथों को उठाने से जो लम्बाई होती है। इस सन्दर्भ में वर्ग को आयत तथा आयत को वर्ग में बदलने और वर्ग को उसी क्षेत्रफल के वृत्त में बदलने हेतु ज्यामिति का सहारा लिया। उन्होंने निष्कर्ष दिया कि वर्ग का क्षेत्रफल भुजा का वर्ग करके तथा आयत का क्षेत्रफल लम्बाई में चौड़ाई का गुणा करके ज्ञात कर सकते हैं। एक आयत को उसी क्षेत्रफल के वर्ग में बदलने हेतु वैदिक युग के प्रसिद्ध ज्यामितिविद् बौधायन (१०००

वर्ष ईसा पूर्व) ने अपना विशेष प्रमेय दिया जिसमें उन्होंने आयत की भुजाओं तथा विकर्ण में सम्बन्ध बताया। लगभग ५०० वर्षों बाद पाइथागोरस (५४० वर्ष ईसा पूर्व) ने समकोण त्रिभुज के प्रमेय को इसी प्रकार बताया। बौधायन का कहना था- आयत के विकर्ण उन दोनों क्षेत्रफलों को बता सकते है जिन्हें लम्बाई और चौड़ाई अलग-अलग बताएँ। दूसरे शब्दों में एक आयत के विकर्ण पर बने वर्ग का क्षेत्रफल इसकी दोनों भुजाओं पर बने वर्गों के योग के बराबर होता है।

यज्ञ वेदियों की भुजाओं की नाप-जोख के लिए शुल्ब अर्थात् रज्जु का प्रयोग होता था। वेदिका मापन में शुल्ब इतनी महत्त्वपूर्ण थी कि ज्यामिति को शुल्ब शास्त्र ही कहा जाने लगा। ये ३० या ४० कदम लम्बी रस्सियाँ महावेदी बनाने में उपयोग की जाती थी। इनका निर्माण रज्जुदल (Cordia myexa) नामक वृक्ष की छाल से किया जाता था। इस प्रकार शुल्बगणित अथवा शुल्बविज्ञान ही विश्व की रेखागणित का प्रथम रूप था।

आर्यभट प्रथम (४७६ ई०) ने एक द्विघात समीकरण का हल निकाल कर बीजगणित की नींव रखी लेकिन यह विधि केवल श्लोकों की रचना में उपयोगी थी। अज्ञात राशियों द्वारा प्रतिपादित होने के कारण इसे अव्यक्त गणित भी कहा गया। बीजगणित के प्रभाव से राशियाँ दो प्रकार की बनी - १. व्यक्त गणित - १, २, ३, ४ आदि अंकगणितीय राशियाँ। २. अव्यक्त गणित क ख ग आदि - इनका मान निकालने से आता है, स्वयं स्पष्ट नहीं होता है। भारतीय ज्योतिर्विद् ब्रह्मगुप्त (५९८ ई०) ने इनका अधिक व्यवस्थित प्रयोग किया। आगे चलकर भास्कर द्वितीय[२६] (११५० ई०) ने अव्यक्त संख्याओं की संकल्पना दी जिसे उसने यावत् - तावत् - कालक, नीलक, पीतक, लोहितक जैसे शब्दों द्वारा प्रदर्शित किया। वर्तमान बीजगणित में इसी प्रकार का प्रयोग होता है।

प्राचीन भारत की विश्व को सबसे महान् देन है- शून्य और दाशमिक अंक पद्धति। संसार में बुद्धि और सभ्यता के विकास में यह गणितीय योगदान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। रोमनलिपि के संख्यावाचक चिन्हों (i, ii, v) आदि द्वारा एक सीमा तक ही संख्याओं को व्यक्त किया जा सकता था, बड़ी संख्याओं को व्यक्त करने में ये संख्या चिन्ह अव्यावहारिक थे। भारतीय दार्शनिकों ने 'ओम्' की मुखाकृति के आधार पर अनन्त ब्रह्म की पूर्णता के प्रसंग में, शून्य की गोलाकृति की रचना की। उन्होंने १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ० का अविष्कार कर दाशमिक प्रणाली विकसित की जिसमें प्रत्येक दसवाँ अंक एक नया पादान होता है, यथा- १०, २० अथवा ५०१, ५००१, १०००५, आदि संख्याओं को गुणित करने में शून्य का प्रयोग भले ही सामान्य सी बात लगती हो किन्तु इस प्रकार के शून्य के स्थान निर्धारण की कल्पना वस्तुतः आश्चर्योत्पादक अवश्य है। १-९ तक के अंकों तथा शून्य की सहायता से बड़ी से बड़ी राशि को सुगमता से लिखा जा सकता था अतः अन्य सभ्यताओं ने भी स्थानमान के इस सांकेतिक चिन्ह को अपना लिया।

भारत के साहित्य में सबसे पहले आचार्य पिंगल (२०० ई०पू०) के छन्दःशास्त्र में शून्य के सांकेतिक प्रयोग मिलते हैं। उसमें छन्द के प्रस्तार के सम्बन्ध में लिखा है- रूपे शून्यम् अर्थात् विषम संख्या से रूप अर्थात् १ घटाने पर शून्य प्राप्त होता है तथा द्वि शून्ये अर्थात् शून्य स्थान में दो बार आवृत्ति कीजिये।[२७] इस प्रकार भारतीय साहित्य में शून्य के संकेत द्वितीय शताब्दी ई०पू० से मिलते अवश्य है किन्तु इसका प्रथम पुरालिपिक प्रमाण नवीं सदी के अन्त में मिलता है, जो सर्वप्रथम ग्वालियर में भोजदेव (८७० ई०) के अभिलेख में प्राप्त है। चीनी विज्ञान के विद्वान् प्रो० नीढम (कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय) मानते हैं कि शुंगकालीन गणितज्ञों (१०० ई०पू०) के पास शून्य के चित्रित संकेत थे जैसा कि घटाने की प्रक्रिया से विदित होता है- १,४७०,००० - ६४,४६४ = १, ,४०५,५३६।

इस समीकरण को लिखने की प्रक्रिया रोचक है२८-

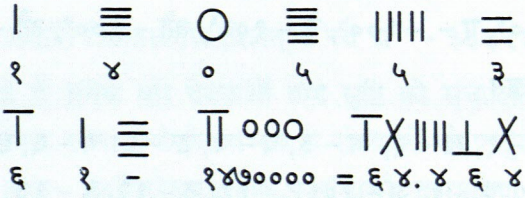

अतः प्रतीत होता है कि संख्या, स्थानीय मान तथा शून्य की संकल्पना प्रारम्भिक तौर पर भारत में जन्मी, इन संकल्पनाओं के आविष्कार से जोड़, घटाना, गुणा, भाग आदि गणितीय प्रक्रियाएँ भी सर्वमान्य रूप में उपयोग में लाई जाने लगीं। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हम तिथियों के अंकन मापों के मानकीकरण तथा जीवनवृत्त सम्बन्धी रेखाचित्रों को संरक्षित करने की मनोवृत्ति वाले कमी नहीं रहे। भारतीय विद्वानों ने वंशानुसारी हस्तगत पारम्परिक ज्ञान को मौखिक रूप से सुरक्षित रखने की वरीयता दी, जीवन की नश्वरता में विश्वास करने के कारण महान् आविष्कारकों तथा उनके अनुपम आविष्कारों का इतिहास हमारे पास नहीं हैं, जो

हमारे जातीय इतिहास के संकलन में हानिकर सिद्ध होता है। इसलिए यह बताना कठिन है कि किस स्थान पर यह संकल्पनाएँ विकसित हुई या वह कौन महान् गणितज्ञ गुरु था जिसने पहले-पहल इनका सूत्रपात किया। परन्तु यह तो निश्चित् है कि भारत से यह संकल्पनाएँ इण्डोचीन, कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा और अन्य पूर्वीय देशों में फैली, जहाँ भारतीय विद्वान् सुदूर यात्राओं में संस्कृति के साथ ले गए। चीन देश में भी बौद्ध धर्म के प्रभाव के पहले ही ये संकल्पनाएँ पहुँची और इतिहास संरक्षण में कुशल चीन देशवासियों ने इन्हें सुरक्षित रिकार्डों में लिपिबद्ध किया जिनका उद्गम स्थल भारत था। फ्रेंच गणितज्ञ लैपलेक (Laplace) के अनुसार –

It is India that gave us the ingenious method of expressing all numbers by ten symbols, each symbol receiving a value of position, as well as an absolute value. We shall appreciate the grandeur of this achievement when we remember that it escaped the genuis of Archimedes and Appolonius.

सन्दर्भ :

१. गणितसार संग्रह (नवीं शताब्दी), १.९.१९, जैन गणितज्ञ, आचार्य महावीर

२. अर्थशास्त्र

३. अर्थशास्त्र।

४. वेदाङ्गज्योतिष – आचार्य लगध, श्लोक सं० ४।

५. वेदाङ्गज्योतिष – आचार्य लगध, श्लोक सं० ३।

६. बीजगणित, लीलावती, भास्कराचार्य।

७. गणितसारसंग्रह, जैनगणितज्ञ, आचार्य महावीर।

८. यजुर्वेद – १५.४, ५।

९. यजुर्वेद – १७.२।

१०. तैत्तिरीय संहिता – ४.४०.११.४ तथा ७.२.२०.१।

११. ललितविस्तर, शिल्पसंदर्शन परिवर्तन।

१२. छन्दःशास्त्र, आचार्य पिंगल, ४.३.१७.२१।

१३. वायुपुराण – १०१.९३-१०३, विष्णुपुराण – ३.४।

१४. आर्यभटीयम् – गणितपाद, २१।

१५. गणितसार संग्रह, संज्ञाधिकार, १.६३-६८।

१६. लीलावती – २.३१।

१७. यजुर्वेद – १८.२४-२५।

१८. अथर्ववेद – १३.४.१५-१८।

१९. अथर्ववेद – ५.१५.१-११।

२०. ऋग्वेद – ३.९.९, १०.५२.६।

२१. यजुर्वेद – ९.३१-३४।

२२. अथर्ववेद – ८.२.२१।

२३. ऋग्वेद – १.१६४.४८।

२४. वनपर्व – १३३।

२५. ऋग्वेद – ५.४०.५।

२६. बीजगणित – भास्कराचार्य।

२७. छन्दःशास्त्र, आचार्य पिंगल, ८.२९, ३०।

२८. आर्षविज्ञान, स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती, पृ० ३६।